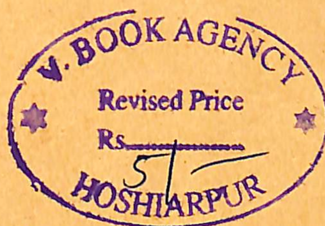
भक्त लल्लेश्वरी

शशिशेखर

भारतीय सांस्कृतिक नवोदय
के सन्त कवि का संक्षिप्त
जीवन चरित्र





बारहवीं से सोलहवीं शती में इस्लामी धर्म व सभ्यता ने भारत में अपने पाँव जमा लिए थे। शासन के कारण इस्लाम धर्म अधिक फैल रहा था। परस्पर विरोध की भावना भी तीव्र हो रही थी। सन्त कवियों ने जहां दोनों धर्मों में आ रही-बुराइयों की कड़ी आलोचना की, वहाँ एकता का भी प्रचार किया। अपने भक्ति-भाव से तथा आन्तरिक निरीक्षण से एक नया रस पैदा कर दिया।



हो एक, बात मुझ से मेरे गुरु बोले,
तू बाह्य छोड़ अन्तरपथ गामिनी
हो ले।
आदेश बने ये शब्द प्रेरणा मेरी,
तब मैं नाची नग्न, मग्न पट
खोले॥

—लल्लेश्वरी

मूल्य ५० न.पै.

ध
ने
के
फै
की
त
आ
ना
र वि
तथा
नया

बात
छोड़ अ

बने ये
नाची

विश्वेश्वरानन्द संस्थान प्रकाशन--२०६

सर्वदानन्द ग्रन्थ-माला—४१ (इ)

लल्लेश्वरी



शशिशेखर

● मूल्य ०.५० न. पै.

● प्रथम संस्करण

● सन् १९६२, संवत् २०१९



● प्रकाशक तथा मुद्रक—
देवदत्त शास्त्री, विद्याभास्कर,
वि. वैदिक शोध संस्थान प्रेस,
साधुआश्रम, होशिआरपुर (पंजाब)
[भारत]

आमुख

भारतीय संस्कृति को जीवित-जाग्रत रखने में भारतीय सन्तों का एक महान् योगदान है। उन्होंने अपनी दिव्यशक्ति, प्रभावशाली जीवन और अलौकिक प्रतिभा से तत्कालीन जनता के हृदयों में जहाँ धर्म की भावना को अक्षुण्ण बनाये रखा, उसके साथ ही कालचक्र के प्रभाव से तथा अविद्या आदि अन्य कारणों से आई हुई बुराइयों को दूर करने में भी बड़ा योग दिया है।

इस सन्त-परम्परा के अधिकतर सन्त कवि भी हुए हैं। उन्होंने अपनी कविता के हृदयंगम भावों द्वारा जनता को मुग्ध बनाये रखा।

भक्त लल्लेश्वरी का जन्म प्रकृति की स्वाभाविक सुषमा से सुभूषित काश्मीर प्रदेश में एक पण्डित परिवार में हुआ। उस समय काश्मीर के शासक मुस्लिम थे। इस्लाम के सूफी सन्तों का भी उस समय जनता पर बहुत प्रभाव था।

मीराबाई की भांति लल्लेश्वरी भी अपने पूर्व जन्मों की भक्ति की निधि अपने साथ लेकर पैदा हुई थी। गृहस्थ में आकर उसे भी कष्ट और अत्याचार सहन करने पड़े। गृहस्थ की यातनाओं ने उसके भक्तिभाव को अधिक विकसित कर दिया और उसके कारण उसने गृहस्थ का परित्याग कर दिया।

इस्लाम के सूफी सन्तों के संसर्ग में आकर उसका भक्तिभाव और अधिक विकसित हो गया और दिव्योन्माद की अवस्था में स्थान-स्थान पर घूमने लगी।

लल्लेश्वरी की यद्यपि शैवधर्म में आस्था थी, तो भी वह सभी का आदर करती थी। उसने कहा है—

"वह शिव हो या केशव हो, या जिन देव हो, उसे कमलज नाथ कह कर ही कोई क्यों न पुकारे—इससे क्या होता है। मैं अबला भवरोग से रुग्णा हूं। मेरे रोग को वह दूर करे चाहे वह, वह हो, या वह, या वह !"

भक्त लल्लेश्वरी के जीवन-सम्बन्धी यह लघु-पुस्तिका पाठकों के समक्ष उपस्थित की जा रही है। विश्वेश्वरानन्द संस्थान इसके लेखक श्री शशिशेखर जी का अत्यन्त कृतज्ञ है कि जिन्होंने हमारी प्रार्थना पर इसे लिख भेजा है। आशा है यह पुस्तिका पाठकों के लिए रुचिकर प्रमाणित होगी।

प्रकाशक

लल्लेश्वरी

[१३५० ईसवी]



शशिशेखर

कश्मीर

कश्मीर कभी सतीसर था—एक बहुत बड़ी मनोरम झील जहाँ सती (पार्वती) नौका-विहार किया करती थीं। दैत्य जलोद्भव अपने को झील का स्वामी बनाना चाहता था; उसने देवी को तरह-तरह से सताना शुरू किया। तब प्रजापति कश्यप ने हिमालय के आँचल में झिलमिलाती इस झील का उद्धार किया। भगवान् के वराहावतार की कथा दोहराई गई। पर्वत में से शिलायें काट कर ऐसा मार्ग बना दिया गया जहाँ से पानी निकल सके। पानी निकल गया और धरती प्रकट हुई। यह जलोद्भव और उसके आतंक का अन्त था, क्योंकि सरोवर में छिपा रह कर ही वह मनमाने अत्याचार किया करता था। प्रजापति द्वारा प्रकट की गई इस धरती पर देवों और मानवों का वास हुआ। ऋषि-पुत्र नीलनाग इस देवभूमि के संरक्षक बनाये गये। इस स्थान का नाम हुआ कश्मीर-मण्डल। जल में से इस धरती का उदभव और देवताओं के वास के लिये दैत्यों से उसकी रक्षा—यह एक ऐसा प्रतीकात्मक महानाट्य है जो कश्मीर को ज़रथुस्त्र की एर्यानिम वेज या ईरान वेज की कल्पना से सम्बद्ध कर देता है। इस महानाट्य के अर्थ को लल्लेश्वरी से लेकर ज़िन्दा कौल तक कवि-संतों ने खोला और समझाया है।

लल्लेश्वरी का प्रभाव

लल्लेश्वरी महान् योगिनी थीं; वे कश्मीरी की प्रथम कवयित्री भी हैं। हिन्दू हों या मुसलमान, ग्रामीण हों या

नगरवासी—कश्मीर के लक्ष-लक्ष वासियों के मन में लल्लेश्वरी के प्रति अपार श्रद्धा है, भक्ति है। प्यार और आदर से उसे 'ललद्यद'—लल्लदादी के नाम से पुकारा जाता है। उसने जो कुछ कहा वह लोक-परम्परा में अब भी मुखर है। उसकी उक्तियां लोकोक्तियां बन गई हैं और प्रत्येक कश्मीरी की ज़बान पर हैं। तुलसी के मानस की ही भाँति लल्ला के 'वाखों' अर्थात् काव्यात्मक भाषा में कहे गये वचनों को अत्यधिक लोकप्रियता मिली है। कहीं कोई गोष्ठी हो, समागम हो या घर में ही कोई प्रसंग हो तो अपनी बात को ज़ोर देकर समझाने के लिये कश्मीरी स्त्री-पुरुष लल्ला की उक्तियां दोहरायेंगे ही। उसके बोल प्रत्येक परिवार में निवास करते हैं। कश्मीरियों के लिये लल्ला का व्यक्तित्व युगों से प्रेरणा और श्रद्धा का केन्द्र रहा है और अब भी है। सामान्य जन ही नहीं समकालीन और परवर्ती सूफी-सन्तों पर भी लल्लेश्वरी का प्रभाव बड़ा व्यापक रहा है। उन्होंने बड़े आदर से उसका नाम लेकर उसे अपना गुरु माना है।

बात विचित्र ही तो है कि जिस व्यक्ति ने कश्मीरी मानस को इतना प्रभावित व प्रेरित किया है उसका नामोल्लेख भी उस समय के इतिहासकारों ने नहीं किया। राजाओं और सुलतानों की चाटुकारी करने वाले 'इतिहासकार' जनसामान्य की भाषा में कविता करने वाली एक पागल स्त्री को भला क्या महत्त्व देते! दरबार और विद्वत्-समाज में प्रतिष्ठित भाषायें थीं संस्कृत और फारसी; मातृभाषा कश्मीरी को हेय दृष्टि से देखा जाता था। समकालीन इतिहास लेखक ने लल्ला का नामोल्लेख किया हो या नहीं, लोक-मानस में उसकी इतनी प्रतिष्ठा थी

कि आज भी गाँव-गाँव में, घर-घर में श्रुति-परम्परा से उसकी चमत्कारिक शक्ति की कहानियां दोहराई जाती हैं और उसके समकालीन तथा परवर्ती अनेक कवियों ने अपनी कविता में उसका वन्दन-अभिनन्दन किया है। यह इस कारण कि इन कवियों पर लल्ला के कृतित्व और विचारों का गहरा प्रभाव पड़ा था। वे भी उसी के रंग में रंगे थे। प्रसिद्ध सूफी कवि शम्स फकीर (१८४३ ई०) की लल्ला के बारे में कही गई ये पंक्तियां उदाहरण के लिये प्रस्तुत की जा सकती हैं—

को'र ललि इकवट आकाश-प्राण, ज़ान मिल नाव भगवानसू'त्य
छ़लि गयि लल मच शुराह यार फानिस, वलि तमि को ज़गि टिकतार तरनस
चोपदीश करनि द्रायि नुन्द रेश्यानस, रिन्दव दोपहस ऐन-एरफान
छ़पि-छ़पिरस गिन्दुन शाह दमदानस, ज़ान मिलनाव भगवानसू'त्य

अर्थात् लल्ला ने योगाभ्यास द्वारा प्राण और आकाश को एक किया। कहने को तो वह शुराहयार घाट पर नहाने को गई पर वास्तव में जेहलम तो क्या, उसने भवसागर का भी संतरण कर लिया। वह नुन्द ऋषि को उपदेश देने गई और विद्वानों ने इस उपदेश को 'अरफान' माना। लल्ला ने शाह हमदान के साथ भी आँख-मिचौनी खेली।

इन पंक्तियों में लल्ला के प्रति आदर और प्रशंसा-भाव का प्रदर्शन तो मिलता ही है, परन्तु उसके जीवन के एक महत्त्वपूर्ण तथ्य पर भी प्रकाश पड़ता है। वह यह कि लल्लेश्वरी शाह हमदान और नुंद ऋषि की समकालीन थी—तभी तो उसने नुन्द ऋषि को उपदेश दिया और शाह हमदान के साथ आँख-मिचौनी खेली! शाह हमदान या सैयद अली हमदानी कश्मीर में इस्लाम के प्रचार के लिये १३७९-८० ई० में हमदान (ईरान) से आया। तलवार के बल पर इस्लाम का

प्रचार हमदानी से पूर्व भी बड़े ज़ोर-शोर से हुआ, पर हमदानी ने इस्लाम प्रचार को एक सांस्कृतिक आन्दोलन के रूप में संगठित किया। कश्मीर इससे पूर्व बौद्ध धर्म का केन्द्र रह चुका था किन्तु उसमें अनेक विचार घुस आये थे और अब उसकी लोकप्रियता और प्रभाव घट चुके थे।

नवीं सदी में स्थानीय चिन्तकों और दार्शनिकों ने एक नई धार्मिक विचारधारा को जन्म दिया—वह थी कश्मीर का अद्वैत शैव-धर्म। कश्मीर का यह शैव-दर्शन दक्षिण के लकुलीश और वीर शैव मत से सर्वथा भिन्न था। नौवीं सदी से लेकर बारहवीं सदी तक वसुगुप्त से लेकर अभिनवगुप्त प्रभृति चिन्तकों ने इसके सिद्धान्तों का प्रतिपादन और प्रचार किया। लल्लेश्वरी के समय तक इस नये दर्शन-सम्प्रदाय ने कश्मीर में काफी सफलता और लोकप्रियता पाई थी। हमदानी और अन्य मुस्लिम सन्त, जो इन दिनों कश्मीर में इस्लाम का प्रचार करने आये, पहले ही सूफी थे और अन्त में शैव-धर्म के सम्पर्क में आकर उनके द्वारा प्रचारित इस्लाम ने एक अलग ही रूप धारण कर लिया। उसका कठमुल्लापन सर्वथा लुप्त हो गया और वह स्थानीय और भारतीय धार्मिक विचारधाराओं के पर्याप्त सीमा तक निकट आ गया। यही कारण है कि इन सूफियों द्वारा प्रचारित इस्लाम ने हिन्दुओं और मुसलमानों में परस्पर वैमनस्य और घृणा के स्थान पर प्रेम, सहयोग और सहिष्णुता को जन्म दिया। तभी लल्ला हमदानी जैसे मुसलमान सन्तों के गहरे सम्पर्क में आ सकी।

हमदानी नक्शबन्दी सूफियों का नेता था। यह सम्प्रदाय उसके समसामयिक संत मुहम्मद बहाउद्दीन नक्शबन्द (१३१६-८६ ई०) ने स्थापित किया था। कई कारणों से राजनीति

से सम्बन्ध रखने के कारण नक्शबन्दियों की बादशाह से अनबन थी। सैयद अली को इन्हीं कारणों से ईरान के तत्कालीन शासक तिमूर से शत्रुता मोल लेनी पड़ी और अंततोगत्वा ७०० शिष्यों के साथ कश्मीर भागना पड़ा। कश्मीर में उन दिनों सुल्तान कुतुबुद्दीन का शासन था। सुल्तान हमदानी के व्यक्तित्व से बड़ा प्रभावित हुआ। कश्मीर में सैयद अली मृत्यु-पर्यन्त रहा और स्थानीय मुसलमानों के लिये बड़ी श्रद्धा तथा सम्मान का पात्र बन गया। कश्मीर में आने वाले इस्लाम-प्रचारकों में सैयद का प्रभाव इतना अधिक था कि उसे शाह हमदान के नाम से पुकारा जाता है। श्रीनगर की शाह हमदान मस्जिद अब भी उसके नाम से प्रसिद्ध है। मस्जिद का निर्माण सिकन्दर बुतशिकन (१३९६–१४१७ ई०) के शासनकाल में सैयद अली के उत्तराधिकारी मीर मुहम्मद द्वारा पूरा हुआ। मस्जिद को कश्मीर भर के मुसलमान बड़ा पवित्र स्थान मानते हैं।

सैयद अली हमदानी के साथ ही साथ लल्ला ने कश्मीर के एक अन्य महान् सन्त शेख नूरुद्दीन नूरानी के सम्पर्क में जीवन बिताया। शेख नूरुद्दीन जो कि त्ररार इलाके का रहने वाला था, हिन्दुओं और मुसलमानों में समान श्रद्धा और आदर का पात्र रहा है। लल्लेश्वरी के ही समान उसे दोनों मतावलम्बी अपनाने में गौरव समझते हैं। हिन्दू उसे नुन्द ऋषि या सहजानन्द के नाम से पुकारते हैं। शेख नूरुद्दीन वास्तव में पीर-ए-शिशियान—ऋषियों के नये सम्प्रदाय के गुरु थे। 'पीर-ए-शिशियान' शब्द ध्यान देने योग्य है—यह संस्कृत और फारसी शब्दों के एक विचित्र संयोग से बना है और तत्कालीन धार्मिक सहिष्णुता और सहयोग का कुछ बोध

कराता है। इस महान् संत का प्रभाव कश्मीरी जन-मानस पर बहुत गहरा है; उसके उपदेशों को लल्लेश्वरी के उपदेशों की ही भाँति बड़ा महत्त्व दिया जाता है। उसके मकबरे पर प्रतिवर्ष एक बहुत बड़ा उर्स लगता है जिसमें भारी संख्या में हिन्दू और मुसलमान भाग लेते हैं। वैसे भी प्रत्येक बृहस्पतिवार को भक्तों के समूह उसकी दरगाह के दर्शनों के लिये ज़ार-ए-शरीफ में उमड़ पड़ते हैं। दोनों सम्प्रदायों के लोग यहाँ आकर मनोकामना पूरी होने के लिए प्रार्थना करते हैं, मनौतियां मानते और भेंट चढ़ाते हैं। कहते हैं, यहां ऐसा करने से मनोकामना अवश्य पूरी हो जाती है। नुन्द ऋषि की चमत्कारिक शक्तियों का बखान आज भी कश्मीर के घर-घर में होता है। रिनार्ड टेम्पल का मत है कि कश्मीरी संत शेख नूरुद्दीन के बारे में जो कुछ दन्तकथायें प्रसिद्ध हैं, वे वास्तव में ईरानी संत नुरुद्दीन लुत्फ-अल्लाह से सम्बन्ध रखती हैं जो तिमूर के पुत्र का मित्र था और जिसकी मृत्यु १४२५ ई० में हुई।

एक और मुसलमान संत, जो कि लल्लेश्वरी का समकालीन रहा है, शम्सुद्दीन ईरानी है। यह काफी प्रसिद्ध संत हुआ है और इसका मकबरा ज़ड़ीबल में है। इसे भी नक्शबन्दी सम्प्रदाय का अनुयायो माना जाता है। टेम्पल के मतानुसार सैयद अली हमदानी और शेख नूरुद्दीन से सम्बन्धित कथायें और शम्सुद्दीन से सम्बन्धित कथायें आपस में इतनी उलझ गई हैं कि यह पूरी तरह से कहा नहीं जा सकता कि निश्चयता कौन किसके बारे में है। परन्तु एक बात तो निश्चित है, वह यह कि शम्सुद्दीन शिया था जब कि शेख नूरुद्दीन और सैयद अली हमदानी सुन्नी मुसलमान थे।

जन्म और विवाह

लल्लेश्वरी का इन मुसलमान धार्मिक नेताओं से सम्बन्ध उसके जन्म-काल पर प्रकाश डालता है। इससे पता चलता है कि लल्ला चौदहवीं शती के मध्य में हुई थी। चौदहवीं शती का कश्मीर के इतिहास में बड़ा महत्त्व है। यह शती कश्मीर में बड़े-बड़े परिवर्तन लाई। इस्लाम का सुसंगठित प्रचार और उसका व्यापक प्रभाव इस युग का सबसे बड़ा परिवर्तन था। उसने कश्मीर में एक नई संस्कृति को जन्म दिया—एक संयुक्त हिन्दू-मुस्लिम संस्कृति को। संस्कृत का प्रभाव धीरे-धीरे कम हुआ और फारसी को महत्त्व मिलने लगा—उसका प्रचार और प्रचलन हुआ। फिर भी संस्कृत अभी पूरी तरह मिटी नहीं थी और फारसी अभी पूर्ण रूप से प्रतिष्ठित नहीं हुई थी। पर इस सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण बात यह थी कि इसी शती में कश्मीरी भाषा का विकास हुआ और उसमें साहित्य रचा गया। यह बात भी कम महत्त्व की नहीं कि कश्मीरी में काव्य-रचना का प्रथम युग एक नारी ने आरम्भ किया। ललद्यद के समय की कश्मीरी भाषा संस्कृतबहुला थी। लल्ला द्वारा प्रयुक्त कश्मीरी बोलचाल और साहित्यिक कश्मीरी का प्राचीनतम उपलब्ध रूप है। यों उससे पूर्व शितिकंठ का 'महायान प्रकाश' मिलता है, पर एक तो उसकी भाषा शुद्ध कश्मीरी न होकर अपभ्रंशात्मक थी और दूसरे उसके विषय का साहित्य से कोई सम्बन्ध नहीं। यह तो लल्लद्यद की ही भाषा है जिससे आधुनिक कश्मीरी भाषा का विकास हुआ।

लल्लद्यद के जीवन की अधिकांश घटनाओं पर अभी तक पर्दा ही पड़ा है। जो थोड़ी-सी घटनायें प्रकाश में आ सकी हैं वे भी लल्ला की आध्यात्मिक शक्तियों से सम्बद्ध की जाने

के कारण अतिरंजित हैं। कहा जा चुका है कि लोगों में लल्ला का प्रभाव बड़ा व्यापक है और इस कारण लल्ला के जीवन-चरित्र के बारे में उन्होंने श्रद्धा से बहुत अधिक काम लिया है। महापुरुषों के साथ चमत्कारिक शक्तियों के ढेर को सम्बद्ध कर देना तो यहाँ के लोगों की एक विशेष मनोवृत्ति रही है। परिणाम यह है कि लल्ला की कोई भी प्रामाणिक जीवनी उपलब्ध नहीं। जो कुछ है वह जनश्रुति और अनुमान पर ही आधारित है।

लल्लेश्वरी का जन्म श्रीनगर से चार मील दूर पांद्रेंठन नामक स्थान के एक कश्मीरी पण्डित परिवार में सुल्तान अलाउद्दीन के शासन-काल में हुआ। सुल्तान अलाउद्दीन १३४० ई० में गद्दी पर बैठा; वह कश्मीर का तीसरा मुस्लिम शासक था। पांद्रेंठन प्राचीन पुराना धिष्ठान है जो कि कभी कश्मीर की राजधानी रह चुका है।

बुद्ध के पूर्व जन्मों से सम्बन्धित जातक-कथाओं की ही भाँति लल्ला के पूर्वजन्म के बारे में भी रोचक कथायें प्रचलित हैं। कहते हैं लल्लेश्वरी के रूप में जन्म लेने से पूर्व उसने कश्मीर में कहीं पर जन्म लिया था और पांद्रेठन में उसका विवाह हुआ था। विवाह के पश्चात् उसको एक पुत्र हुआ। इस परिवार का कुलगुरु सिद्ध श्रीकंठ नामक व्यक्ति था जो कि वसुगुप्त को सीधो शिष्य-परम्परा में था।

लल्ला के पूर्वजन्म के इस प्रसव के ग्यारहवें दिन सिद्ध श्रीकंठ शिशु का 'कहनेथर' संस्कार करने के लिये आया तो शिशु की माँ ने उससे प्रश्न किया—"इस नवजात शिशु के साथ मेरा क्या नाता है?" सिद्ध प्रश्न सुनकर हैरान हो गया। भला यह भी कोई प्रश्न था! बोला, "ठोक बात यह

है कि वह तुम्हारा पुत्र है।" "नहीं" उत्तर मिला। "तो वह कौन है?" विस्मित सिद्ध ने ही अब की प्रश्न किया। वह इस पहेली को बूझ न सका। स्त्री ने उत्तर दिया, "मैं अभी मरने वाली हूँ और मारहोम गाँव में एक बिल्ली के रूप में जन्म लूँगी। तुम अमुक-अमुक चिह्नों से मुझे पहचान पाओगे। जिज्ञासा हो तो एक वर्ष बाद मारहोम में मुझे ढूँढ निकालो। तब मैं तुम्हें समुचित उत्तर दूंगी।"

ये शब्द कहते ही स्त्री की मृत्यु हो गई और लल्ला का दूसरा जन्म एक बिल्ली के रूप में मारहोम गाँव में हुआ। एक वर्ष व्यतीत होने पर सिद्ध श्रीकंठ मारहोम गया और बताये गये चिह्नों से युक्त बिल्ली की खोज करने लगा। खोज सफल हुई—सिद्ध को उन चिह्नों से युक्त बिल्ली मिल गई और उससे उसने वही पुराना प्रश्न पूछा। बिल्ली बोली, "देखो, मैं तुम्हें इसी समय इस बात का उत्तर देती पर मुझे अभी मर जाना है। मैं इस-इस प्रकार के चिह्नों से युक्त एक पिल्ले के रूप में बिजबिहारा में जन्म लूंगी। तुम्हें अपने प्रश्न का उत्तर पाना हो तो तुम छः मास बाद मुझे बिजबिहारा में ही मिलो।"

उसने ये बातें कही ही थीं कि झाड़ी से एक शेर निकल आया और उसने उस बिल्ली को खा डाला। सिद्ध की जिज्ञासा और भी प्रबल हो गई और वह छः मास बाद उक्त पिल्ले को खोजने बिजबिहारा गया। चिह्न पहले ही बतला दिए गए थे, अतः पिल्ला आसानी से मिल गया। वही पुराना प्रश्न पिल्ले से पूछा गया और उत्तर से पता चला कि पिल्ला तत्काल मरने वाला था और अमुक स्थान पर पुनः जन्म लेने वाला था। सिद्ध को प्रश्न का उत्तर सुनना हो तो वह उसी स्थान

पर निर्दिष्ट अवधि के बाद पहुँचे। पिल्ला यह सब कह ही रहा था कि एक घोड़े के नीचे दब कर उसकी मृत्यु हो गई।

इस तरह छः जन्मों तक बेचारे सिद्ध को टाला जाता रहा। प्रश्न का उत्तर उसे मिला ही नहीं। तंग आकर उसने अपनी जिज्ञासा को शान्त करने के प्रयत्न ही छोड़ दिए और वह अवन्तीपुर के समीप एक पहाड़ी वस्तर वन को ओर तपस्या करने के हेतु चला गया।

अन्ततः, लल्लेश्वरी का लल्लेश्वरी के रूप में जन्म उसी परिवार में हुआ जहाँ अपने पहले जन्म में प्रसव के ग्यारहवें दिन उसकी मृत्यु हुई थी। इस दन्तकथा के अनुसार यह उसका सातवां जन्म था। लल्लेश्वरी जब १२ वर्ष की थी तो उसका विवाह पाम्पोर (प्राचीन पद्मपुर), जिसे राजा अजातपीड के मन्त्री पद्म (८१२-८४६ ई०) ने बसाया, के द्रंगबल मुहल्ले में हुआ। लल्लेश्वरी के पति का पिता तो जीवित था किन्तु माँ सौतेली थी। विवाह की तिथि से एक दिन पूर्व सिद्ध श्रीकंठ वस्तर वन से लौटा और कन्या-पक्ष का कुलगुरु होने के नाते यह विवाह उसी ने सम्पन्न कराया। विवाह चल ही रहा था कि वधू ने सिद्ध के कान में कहा, "वह शिशु जिसे मैंने जना था और जिसका मुझसे सम्बन्ध जानने के लिये तुमने मेरे अनेक जन्मों में मेरा पीछा किया, यही लड़का है जोकि यहां दूल्हा बना बैठा है।" सिद्ध चकित हो गया, उसे पिछली सारी घटनायें याद हो आईं।

इस विचित्र किंवदन्ती का अभिप्राय या उद्देश्य क्या है, यह स्पष्ट नहीं होता। शायद इससे यही पता चलता है कि लोग लल्ला को एक बहुत बड़ी योगिनी समझते थे और उसकी

आध्यात्मिक शक्तियों का आतंक उन पर इतना था कि उसके पूर्वजन्मों के बारे में यह मनोरंजक कथा गढ़ दी गई।

श्वसुर ने लल्लेश्वरी का नाम पद्मावती रखा। वह बहू से स्नेहपूर्ण व्यवहार करता था। लेकिन लल्लेश्वरी का वैवाहिक जीवन कष्ट और कटुता की कहानी था। उसने और उसके पति ने वास्तव में पति-पत्नी का जीवन बिताया ही नहीं। परिवार पर उसकी सौतेली सास का आतंक था। वह दुष्ट-स्वभाव की स्त्री थी। पद्मावती को उसके अनेक अत्याचार सहने पड़े। परन्तु निरन्तर अन्याय और अत्याचार सह कर भी लल्लेश्वरी धैर्य और शान्ति से काम लेती। लल्ला से सास के दुर्व्यवहार की बहुत कहानियाँ प्रचलित हैं जो भारतीय परिवार के परम्परागत सास-बहू वैर का अच्छा दृष्टान्त प्रस्तुत करती हैं। सास की यातनायें सहने वाली कश्मीरी बहुएँ इन कथाओं का खूब प्रयोग करती हैं। हाँ, तो सास दिन भर लल्ला से घर का सारा काम करवाती थी और तिस पर भरपेट भोजन भी उसे नहीं देती थी। भोजन परोसने के समय वह लल्लेश्वरी की थाली में सिल-बटा रख देती थी और ऊपर से थोड़े से चावल फैला देती थी। देखने वाला समझता कि उसे थाली भर कर चावल खाने को मिलते हैं। पर वास्तव में लल्ला को अध-भूखा ही रहना पड़ता था। बारह वर्ष तक यही क्रम चलता रहा। पर पद्मावती ने इस बारे में कोई शिकायत न की और न किसी पर सास के अत्याचारों का भेद प्रकट होने दिया। नाममात्र का भोजन कर लेने के बाद वह चुपचाप वही पत्थर धो-धाकर सास को लौटा देती।

बारह वर्ष के बाद बात प्रकट हो ही गई। लल्ला के

ससुराल वालों के यहाँ ग्रह-शान्ति के अवसर पर एक भोज हो रहा था। भोज के लिये एक मोटे-ताज़े भेड़ को मारा गया। लल्लेश्वरी घड़ा लिये नदी पर पानी भरने जा रही थी तो सहसा पड़ोसी ने हंसी में उससे कहा, "तुम्हारे तो आज ठाठ हैं; तुम्हारे घर भोज का आयोजन है और बड़े बड़े भेड़ मारे गये हैं।" यह सुनकर लल्ला के मुँह से सहसा यह बात निकल गई—

"होरड मा'रितन किन कठ
नो'शि नीलवठ चलि न ज़ाह"

अर्थात् बड़ा भेड़ मारा जाये या छोटा, बहू को क्या। उसकी थाली से तो पत्थर कभी जायेगा नहीं।

संयोगवश लल्ला का ससुर समीप खड़ा था। उसने यह बात सुन ली और निश्चय किया कि वह बात का पता लगायेगा। शाम को जब उसकी पत्नी ने बहू के लिये थाली परोसी तो उसने अचानक पद्मावती के हाथ से थाली छीन ली! चावल हटाने पर नीचे से एक पत्थर निकल आया। बहू की बात सच निकली। अपनी बहू पर अपनी पत्नी का यह अत्याचार देखकर वह आग-बबूला हो गया और उसने उसे धिक्कारा और फटकारा। पर इससे स्थिति और भी बिगड़ गई। सास का व्यवहार और भी कड़ा हो गया। वह अपनी घृणा का प्रदर्शन प्रत्येक बात पर करने लगी। थाली में पत्थर रखने का भेद उसे और पद्मावती के अतिरिक्त किसी तीसरे को मालूम नहीं था। निश्चय था कि पद्मावती ने ही उसे प्रकट किया होगा, यह सोच सास जल-भुन गई। अब वह अपने बेटे को झूठी बातें सुना-सुना कर उसे बहू के विरुद्ध उकसाने और भड़काने लगी। पद्मावती पर दोहरा अत्याचार ढाया जाने लगा। पति उसके प्रति शंकालु हो गया।

लल्ला प्रतिदिन मुँह-अन्धेरे उठ कर (पाँव पानी में डुबोये बिना ही) नदी के पार चलते-चलते पहुँचती और ज़ैनवोरा गाँव के घाट पर स्थित नारकेश्वर भैरव के स्थापन में बैठकर ईश्वर के ध्यान में मग्न हो जाती। उस स्थान पर आज भी एक शहतूत का वृक्ष है। शंकाकुल पति ने एक दिन उसका पीछा किया, पर उक्त धार पर लल्ला को चुपचाप बैठे देखकर उसे कुछ भी समझ न आया। उसने सोचा कि उसकी स्त्री पागल हो गई है। पानी से भरा घड़ा लिये जब लल्ला लौटी तो क्रोध से पागल पति ने लाठी से सिर पर रखा घड़ा फोड़ डाला। घड़ा फट गया, पर फूटे घड़े से भी पानी गिरा नहीं, ज्यों का त्यों रहा। लल्ला ने उस पानी से घर के सभी बर्तन भर दिये। तब भी वह समाप्त नहीं हुआ। अन्त में शेष जल को घर के बाहर एक स्थान पर फेंक दिया और वहाँ तुरन्त एक सरोवर बन गया। इस सरोवर को लल त्राग कहा जाता है और वह आज भी विद्यमान है।

लल्ला मृणाल के तार से भी महीन सूत कात लेती थी पर फिर भी सास उस तार को मोटा कह कर उससे झगड़ पड़ती थी। आखिर तंग आकर लल्लेश्वरी ने जीवन का यह निरर्थक अध्याय बन्द करने की ठानी। उसने घर छोड़ दिया और अपने कपड़े भी उतार फेंके। दिव्योन्माद में वह इधर-उधर घूमने लगी। इन्हीं दिनों से उसे लल नाम भी प्राप्त हुआ। कश्मीरी भाषा में 'लल' का अर्थ लाड़ली होता है और प्यार से बहू-बेटियों को इस नाम से पुकारा जाता है। सम्भवतः, लल्ला को भी यह नाम प्यार के कारण ही लोगों ने दे दिया हो।

यह बात प्रसिद्ध है कि वह नग्न या अर्ध-नग्न अवस्था में

नाचती-गाती हुई मस्त, जगह-जगह घूम कर लोगों को अनुभूत सत्यों का उपदेश पद्य में देती थी। अपने इस अभ्यास के लिये लल्ला को अपमान और डाँट-फटकार सहनी पड़ी; पर उसने साफ कह दिया कि यह बाहरी विश्व तो भ्रम मात्र है। अतः, उसने अपने को अपने भीतर केन्द्रित कर लिया है जहाँ वह विराट से मिलन का अनुभव करती है। लल्ला का नाचना तो वास्तव में शिवजी के उस नृत्य के अनुरूप था, जो सृष्टि के उन्मेष के समय का नृत्य है। वह दिव्य-नृत्य था। उसे इस अवस्था में देखकर जब कुछ लोग उसे अशिष्टता के लिये डांट देते तो वह झट उत्तर दे उठती कि केवल वही पुरुष है जो ईश्वर से डरे और ऐसे व्यक्ति बहुत कम हैं। इस पर लोग उसे पागल समझने लगे। पर कुछ सयाने-समझदार लोगों को लल्ला ने अपनी वस्त्रहीनता का रहस्य बता दिया—

गोरन दोपनम कुनुय वचुन
न्य'बरि दोपनम अंदर अचुन
सुय म्य ललि गोम वाख त वचुन
तवय ह्योतुम नंगय नचुन !

इन पंक्तियों का भावानुवाद यों किया जा सकता है—

हाँ, एक बात मुझसे मेरे गुरु बोले
तू बाह्य छोड़ अन्तर पथ-गामिनि हो ले
आदेश बने ये शब्द—प्रेरणा मेरी
तब से मैं नाची नग्न, मग्न, पट खोले !

इसी अवस्था में नाचती-गाती और उपदेश देती लल्ला जब गलियों से गुज़रती तो बच्चे पीछे हो लेते और बोलियां कसने लगते। पर लल्ला तो अब वीतराग हो चुकी थी। जो जीवन के खेल को जान गया हो उसे भला बच्चों का यह खेल क्या

खलता। एक बार एक बज़ाज़ की दुकान के समीप से वह जा रही थी कि बच्चों ने बोलियां कसना और तालियां बजाना शुरू किया। बज़ाज़ बच्चों की यह अशिष्टता देखकर उन पर बिगड़ उठा और उसने उन्हें डाँट कर भगा दिया। लल्ला को यह अच्छा न लगा।

वह बज़ाज़ के पास गई और उससे गज भर कपड़ा माँगा। बज़ाज़ कपड़ा देने को ही था कि लल्ला ने उससे उस कपड़े को दो बराबर भागों में काटने को कहा ताकि दोनों भागों का वज़न बराबर हो। बज़ाज़ ने वैसा ही किया और उन्हें तोला—स्वाभाविक ही है कि दोनों का वज़न बराबर था। लल्ला ने कपड़े के दोनों भाग ले लिये और एक को एक कन्धे और दूसरे को दूसरे कन्धे पर रख कर वह बाज़ार से चल दी। राह में यदि कोई व्यक्ति उसका सत्कार-स्तुति करता तो वह बायें कन्धे पर रखे कपड़े में एक गाँठ डाल देती। इसी तरह यदि कोई उसे अपशब्द कहता या उसकी निन्दा करता तो वह दायें कन्धे पर पड़े कपड़े में एक गाँठ डाल देती। इस प्रकार गली बाज़ार से होती हुई वह जा रही थी और अपनी निन्दा या स्तुति सुनने पर बायें या दायें कन्धे पर पड़े कपड़े के भागों में गाँठे डालती जाती थी। दिन-भर ऐसा कर चुकने के बाद साँझ को वह उसी बज़ाज़ की दुकान पर लौटी। कपड़े के दोनों भाग बज़ाज़ को लौटाते हुए उसने उन्हें पुनः तोलने को कहा। स्वाभाविक था कि चाहे जितनी भी गाँठें उनमें पड़ी थीं, वे तोल के बराबर निकले। इस पर लल्ला मुस्कराती हुई उससे बोली, "यदि निन्दा या स्तुति से इस कपड़े में कोई अन्तर नहीं आया तो मैं तो मनुष्य हूँ। फिर भला तुम इन लड़कों पर क्यों बिगड़े?" बज़ाज़ उत्तर में क्या कहता।

श्रद्धा-युक्त मौन में उसका सिर झुक गया। लल्ला ने उसे समझाया—

हासा बोल परिनम सासा
म्य मनि वासा खेद नो ह्यये
युदवय शंकर बखत आसा
मुकरिस स्वासा मल क्याह प्यये !

अर्थात्—कोई मेरी कितनी ही खिल्ली क्यों न उड़ाये, मुझे हजार गालियाँ ही क्यों न सुनाये, पर उससे मेरे मन में तनिक भी खेद नहीं होगा। मैं शंकर की भक्त जो हूँ। दर्पण पर पड़ी राख से भला दर्पण मैला होता है क्या !

लल्ला की आध्यात्मिकता

मीरा भी दर्द-दीवानी होकर वन-वन डोली थी। पर उसके दर्द और लल्लेश्वरी के दर्द में थोड़ा अन्तर है। मीरा मूलतः भक्त थी, लल्ला शैव-योगिनी। वसुगुप्त, सोमानन्द और अभिनवगुप्त जैसे महान दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित शैव-मत लल्ला की चिन्तना का आधार था। शैवधर्म के मर्म को उसने अपने 'वाखों' द्वारा जन-जन को समझाया। कुछ लोग भले ही उसे बावली कहते पर अधिकाँश तो बड़ी श्रद्धा और जिज्ञासा से उसकी बात सुनते-गुनते थे। लल्ला की काव्यात्मक उक्तियों ने लोगों के हृदयों पर इतना प्रभाव इसलिए डाला कि वे उनकी अपनी भाषा—कश्मीरी में थी। कश्मीर शैवधर्म के प्रतिपादक विचारकों की शिक्षा ने लोगों को अनुप्रेरित किया था, उनकी प्रतिष्ठा जन-मानस में पथ-प्रदर्शकों के रूप में हो चुकी थी। लल्ला की कविता में उन धार्मिक सिद्धान्तों की सुबोध और सरस अभिव्यक्ति थी। पर उसकी

कवितामात्र पुस्तक-वर्णित धर्म नहीं है—उसमें लोगों के विश्वास-विचार और आशा-निराशा का स्पन्दन है।

शैवधर्म की दीक्षा उसने अपने कुलगुरु बूढ़े सिद्ध श्रीकंठ से ली। स्यद्ध बोय या सिद्ध श्रीकंठ कश्मीर शैवधर्म के संस्थापक वसुगुप्त की शिष्य परम्परा में से था। वह पाम्पोर के नम्बलबल मुहल्ले में रहता था। सिद्ध के घर के समीप एक गुफा थी जहाँ बैठकर वह और लल्लेश्वरी साधना किया करते थे। इस गुफा का आजकल कोई अस्तित्व नहीं है। हाँ, जिस घाट पर सिद्ध नहाया करता था, वह अब भी विद्यमान है और सिद्धयार के नाम से प्रसिद्ध है। घाट के प्रति लोग बड़ी श्रद्धा रखते हैं। उनका विश्वास है कि उसमें स्नान करने से पुण्य-लाभ होता है।

कहने को तो सिद्ध लल्ला के गुरु थे, पर ऐसी अनेक किंवदन्तियां प्रचलित हैं जिनके अनुसार वह आध्यात्मिक क्षेत्र में उससे भी आगे निकल गई थी। इतना ही नहीं, शिष्या गुरु की ग़ल्तियाँ भी भाँप जाती थी और उन पर टिप्पणी कर बैठती थी। कहते हैं कि एक दिन सिद्ध दरिया पर नहा रहा था। लल्ला भी उसके थोड़ी दूर एक गन्दा बर्तन माँज रही थी। सिद्ध उसे ऐसा करते देख हँस पड़ा और बोला कि, "केवल बाहर से माँजने पर बर्तन भीतर से शुद्ध नहीं हो सकता।"

"तो आप स्नान द्वारा मात्र शरीर को साफ करके भीतर से भी कैसे शुद्ध हो जायेंगे!" लल्ला ने झट से उत्तर दिया। लल्ला ने कर्म के सारतत्त्व को ग्रहण किया था। वह उसे ही महत्त्व देती थी, बाहरी पूजा-विधान और आडम्बर को नहीं।

कबीर तो इसी आडम्बर को देखकर क्षुब्ध हो बोल पड़े थे—

'मन न रंगायो, रंगायो जोगी कपरा।'

एक अन्य कथा में भी शिष्या गुरु को हैरान कर देती है। एक दिन सिद्ध चांद्रायन के अवसर पर साधना कर रहा था। उसे चालीस दिन का व्रत था। लल्ला उससे मिलने के हेतु घर पहुँची तो वहाँ उसे न पाकर उसने सिद्ध की पत्नी से उसके विषय में पूछा। वह बोली—"सु छु करान ज़फ" (वे जप कर रहे हैं)। यह सुनकर लल्ला कह उठी—"न, नंद्रमर्गि ड्यूठुस गुरिस टफ" (नहीं, वह अपने उस घोड़े के बारे में सोच रहा है जो नन्दमर्ग में है)। सिद्ध ने बात सुन ली; वह अत्यन्त लज्जित हो गया। उपासना करते-करते उसका मन वास्तव में भटक गया था; वह अपने उस घोड़े के बारे में सोच रहा था जिसे उसने नंदमर्ग चरने के लिए भेजा था।

लल्ला की आध्यात्मिक शक्ति की बात प्रसिद्ध हो चली। उसे पगली कह कर दुत्कारने वाले भी उसका सत्कार करने लगे। कुत्सा के स्थान पर अब उसे पूजा मिलने लगी। अपनी आखरी वाणी में वह लोगों को विराट से साक्षात्कार के रहस्यों को, शैवधर्म के मर्म को समझाने लगी। सामान्य व्यवहार की भाषा और दैनिक जीवन से लिये गये दृष्टान्तों द्वारा लल्ला ने जनता को वह सुझाया-बताया जो मोटी-मोटी पोथियाँ भी उन्हें बतला-सिखला नहीं सकती थीं। जहाँ भी वह जाती उसके उपदेश सुनने के लिये भीड़ की भीड़ उमड़ पड़ती। उसे योगेश्वरी माना गया। लल्ला को यह सम्मान और सत्कार जनसाधारण से तो मिला ही, उस युग के बड़े-बड़े साधक और सिद्ध, संत और सूफी भी उसे बहुत मानते थे; उसका सत्संग पाने के यत्न करते रहते। जिन संतों-फकीरों

का लल्ला से निकट सम्बन्ध था उनमें शाहहमदान और नुन्दऋषि प्रमुख थे। इन दोनों मुसलमान संतों से लल्ला की बड़ी घनिष्ठता थी। ये साधक वास्तव में उस युग के आध्यात्मिक आन्दोलन के केन्द्र थे। प्रायः वे अध्यात्म-गोष्ठियों में धर्म-चर्चा किया करते। बात शायद विचित्र लगे कि परस्पर विरोधी मतों के अनुयायी एक दूसरे के इतने निकट थे—वह भी उस युग में। पर ज़रा गहराई से देखने पर यह विरोधाभास स्पष्ट हो जाता है, रहता ही नहीं। जिस इस्लाम में ये संत विश्वास रखते थे और जिसके प्रचार में वे संलग्न थे वह कट्टर-पंथियों द्वारा प्रचारित जेहाद नहीं, एक शाँतिपूर्ण वैचारिक आन्दोलन था। अपने मूल-स्वरूप में यह आन्दोलन हिन्दू विचारधारा से भिन्नता नहीं, अत्यधिक साम्य रखता था। उपनिषदों, वेदान्त, योग तथा कश्मीर शैवमत के दर्शनों का उस पर इतना अधिक प्रभाव था कि भेद करना कठिन हो जाता था। इन विचारों को फैलाने में तलवार का प्रयोग नहीं किया गया जैसा कि इस्लाम के प्रचारकों ने प्रायः किया है। यह नहीं कि कश्मीर में तलवार के आतंक ने इस्लाम को फैलाया नहीं; परन्तु लल्लेश्वरी के युग में प्रचार का नेतृत्व कठमुल्लाओं और धर्मांध शासकों के हाथ में नहीं सूफियों के हाथ में था। घृणा और वैमनस्य नहीं, प्रेम और सहिष्णुता उनका अस्त्र था। यह और बात है कि लल्ला का युग बीतते ही कश्मीर को सिकन्दर बुतशिकन के समय में भयंकर घृणा, नृशंसता और पाशविकता का नंगा नाच देखना पड़ा। परन्तु लल्ला के युग में हिन्दू विचारधाराओं और सूफी मत ने सह-अस्तित्व का एक अद्वितीय उदाहरण प्रस्तुत किया।

नक्शबन्दी सम्प्रदाय के सूफी प्राणायाम की ही भान्ति

श्वासनियमन की क्रियाएँ किया करते थे। वे आत्मा के जन्म-जन्मान्तर के सिद्धान्त को मानते थे और अपने प्रवचनों में यह विश्वास प्रकट करते थे कि मृत्यु के पश्चात् आत्मा नया शरीर ग्रहण करके पुनः संसार में आ जाती है। हिन्दुओं की ही भान्ति वे जन्म-मरण के इस चक्र से मुक्ति के उपाय सोचा और सुझाया करते। मुक्ति, उनके विचार में, तभी प्राप्त हो सकती है, जब व्यक्ति ईश्वर के ध्यान में अनन्यता से डूब जाय। मन ईश्वर में इतना लीन रहना चाहिए कि भीड़ में भी विचलित न हो, भटके नहीं, "अपने अन्तस्तल में ध्यान केन्द्रित करो। आंखें बन्द करो और मुँह भी, जिह्वा तालू से लगी रहे, दाँत एक-दूसरे से सटे हों। अब श्वास रोको और 'ईश्वर के अतिरिक्त और कोई ईश्वर नहीं'—ये शब्द जिह्वा द्वारा उच्चारण करके नहीं, हृदय में दोहराओ।" ऐसा करोगे तो मुक्ति अवश्य मिलेगी। संसार के आकर्षणों से छूट जाओगे! इसका अवश्य फल मिलेगा क्योंकि हृदय मानव-अहं का केन्द्र है, मानव-अस्तित्व का सार। सारा संसार हृदय का ही विकसित स्वरूप है। जैसे बीज में वृक्ष निहित रहता है वैसे ही हृदय में सारी सृष्टि निहित है। पवित्र पुस्तक कुरान का सार उसमें भरा पड़ा है। हृदय से सूफियों का अभिप्राय मन से था।

यदि नाम न दिया जाये तो सूफियों के ये उपदेश हिन्दू सन्तों के प्रवचनों से कोई अन्तर रखते नहीं दीख पड़ते। दोनों में भेद करना कठिन है। सूफी अपने को सत्य का अनन्य उपासक मानते थे। समस्त सृष्टि को संचालित करने वाली शक्ति परमात्मा का प्रेम ही है। और स्वयं सृष्टि परमात्मा का आत्म-प्रकाशन नहीं तो और क्या है। जो कुछ है सभी उसी का अंशरूप है। जैसे सूर्य की किरणें सूर्य से निःसृत होकर पुनः

सूर्य में विलीन हो जाती हैं वैसे ही आत्मा पुनः परमात्मा में विलीन हो जाती है। यह विलय ही सूफियों का ध्येय था, यही इनकी ललक थी और यह सम्भव है निरन्तर उसकी प्रेम-साधना में युक्त रहने से। साधना में प्रवृत्त करने और पथ-प्रदर्शक के लिये गुरु के प्रति सम्पूर्ण समर्पण और श्रद्धा की आवश्यकता है। सूफियों के ये विचार इस्लाम के कट्टर-पंथियों को मान्य नहीं थे—यह तो कुफ्र था! अतः सूफियों पर सत्ताधीशों ने भान्ति-भान्ति के अत्याचार किए, उन्हें यातनायें दीं।

नक्शबन्दी सम्प्रदाय भी उदारपंथी था। उसके अनुयायी सैयद दलितों और दुर्बलों के रक्षक और सहायक थे। वे निराशों और दलितों के हिमायती थे और इनके लिये निर्भयता से आवाज़ उठाते थे। वे स्पष्टता से अपने इस विचार को प्रचारित करते थे कि अकेला राजा ही शासन-कार्य को ढंग से चलाने के लिए काफी नहीं। उसे मनमानी से रोकने और ईश्वरीय नियमों के अनुसार चलाने के लिये दिव्य-प्रेरणा से अनुप्रेरित कोई आध्यात्मिक परामर्शदाता अवश्य होना चाहिए। सैयदों की इस विचारधारा के कारण उनकी प्रायः शासकों से अनबन रहती थी और शासक उन्हें तंग करने की कोशिशें करते रहते थे; राज्य-सत्ता का यह अपमान उन्हें सह्य न था। जैसा कि पहले भी कहा गया है, सैयद हमदानी को शायद इन्हीं कारणों से हमदान छोड़ कश्मीर आना पड़ा होगा। पर जनश्रुति में एक और मनोरंजक कथा प्रसिद्ध है जिसका सम्बन्ध लल्लेश्वरी से है। इस कथा के अनुसार मध्य-एशिया के प्रसिद्ध बादशाह तिमूर (१३७८ ई०) का स्वभाव था कि वह भेस बदल कर राजधानी में घूमा करता था कि

प्रजा के सुख-दुःख का उसे सच्चा हाल मालूम हो सके। एक रात भिखारी का भेस बनाये वह नगर में घूम रहा था कि उसे एक घर से एक बालक का क्रन्दन सुनाई दिया। भीतर घुसा तो पता लगा कि बहुत गरीबी के कारण बालक और उसके माँ-बाप कई दिनों से भूखे थे। भूख के कारण ही बालक बिलख रहा था। दृश्य ने शाही भिखारी को हिला दिया। घोर दरिद्रता का यह तांडव देखकर वह द्रवित हो उठा और शीघ्र ही रोते बालक के लिये रोटी लेकर लौटा। जाते-जाते बादशाह उनके आंगन में अशरफियों का एक थैला छोड़ गया और खुदा से दुआ की कि वह इस दरिद्र परिवार को सुखी और सम्पन्न बनाये। भोर होने पर गृहिणी उठी तो आंगन में थैला देख फूली न समाई। एक अशरफी लेकर वह पड़ोस में रहने वाले एक सैयद के यहाँ भुनाने गई। दुष्ट सैयद ने स्त्री से अशरफी के बारे में पूछताछ की और न केवल वह थैला उससे छीन लिया अपि तु उलटे बेचारी पर अभियोग लगाया कि उसने वह थैला उसका चुराया है। बेचारी स्त्री रोती-कलपती तिमूर के पास फरियाद करने गई। तिमूर को अशरफियों का रहस्य तो मालूम था ही, उसने सैयद को दरबार में बुलाया। वह सैयद और उसकी ओर से प्रस्तुत सभी गवाह—जो कि सारे के सारे सैयद ही थे—शपथ लेकर कहने लगे कि औरत ने थैला चुराया है। झूठी गवाही सुनने पर बादशाह क्रोध से आपे में न रहा। उसने छल से छीना गया धन औरत को लौटाया और घोषणा की कि उसके राज्य में रहने वाले सभी सैयदों को गर्म लोहे के घोड़े पर बैठ कर अपनी शुद्धता की परीक्षा देनी होगी। यह भयानक घोषणा सुनकर सैयद काँप उठे। अग्नि-परीक्षा तो वे क्या खाक देते,

भयभीत होकर रातों-रात नगर से भाग गये। केवल सैयद हमदानी इस भयानक कसौटी पर खरा उतरा। गर्म लोहे के घोड़े पर चढ़ने पर भो उस पर आँच न आई। करिश्मा देख लोग स्तम्भित रह गये, परन्तु सैयद अली वहां नहीं रह सका। (सन् १३७८ ई० में) वह हमदान से कश्मीर की ओर चल पड़ा।

उधर श्रीनगर से (१० मील दक्षिण पश्चिम में) शोवियान जाने वाली सड़क पर लल्ला चली जा रही थी—नंग-धड़ंग, अपनी ही तरंग में! शाह हमदान को आते देख वह तुरन्त भाग गई। ऐसा करना लल्ला के लिये अजीब बात थी। वह किसी भी पुरुष के सामने न लज्जा अनुभव करती और न तन ढाँपने का यत्न करतो थो। उसके लिये वे सब पुरुष थे ही नहीं। उसे भागता देख लोग विस्मित हो गये। पूछने पर लल्ला ने कहा, उसने सचमुच एक पुरुष देखा है। अतः लज्जा निवारण के लिये उसे वस्त्र चाहिएँ—वह नंगो जो है! ऐसी अवस्था में वह उस 'पुरुष' से मिल कैसे सकती है! वस्त्र माँगने के हेतु वह एक बनिये के पास गई पर बनिये ने इन्कार कर दिया। इस पर वह एक नानबाई की दुकान की ओर भागी और इससे पूर्व कि वह उसे रोके या कुछ कहे लल्ला तन्दूर में घुस गई और ऊपर से ढक्कन लगा दिया। तन्दूर में रोटियां सिक रही थीं अतः वह बहुत गर्म था। भय के मारे बेचारा नानबाई स्तंभित रह गया कि उसे अब बादशाह की ओर से सज़ा मिलेगी। सहसा लल्लेश्वरी तन्दूर से निकली और आश्चर्य विस्फारित नेत्रों से नानबाई ने देखा कि वह जल कर कोयला होने के बजाय एक निराली कांति लिये थी और दिव्य-स्वर्णिम वस्त्र पहने हुए थी! और इस (दन्त)

कथा ने जन्म दिया एक प्रसिद्ध कश्मीरी कहावत को—"आई थी बनिये के पास और गई नानबाई के पास!" नानबाई के पास से दिव्य वस्त्रों से आभूषित योगिनी तब शाह हमदान से मिलने गई। कहते हैं, लल्लेश्वरी का इस प्रकार गर्म तन्दूर में कूद पड़ना और दिव्य वस्त्र पहन कर बाहर आने का उद्देश्य जहाँ सैयद अली के प्रति मान दिखलाना था, वहाँ उसका मान-भंग करना भी था। वह उसे गर्म लोहे पर चढ़ने की सामर्थ्य का गर्व भुला देना चाहती थी!

शाह हमदान की ही भान्ति नुन्द ऋषि से लल्ला का घनिष्ठ सम्पर्क था। शेख नूरुद्दीन के जन्म से ही दोनों की आध्यात्मिक विभूतियों में परस्पर सम्बन्ध था। लल्लेश्वरी नूरुद्दीन की 'दुद मा'जि' ('दूध की माँ' godmother) थी। जन्म लेने पर शिशु नूरुद्दीन माँ का दूध नहीं पीता था। लल्ला ने यह देखा तो उसे सम्बोधित करते हुए कहा—'ज़्यन मंदछोख न त च्यन क्याज़ि छुख मंदछान?" अर्थात्—"जन्म लेने में तो शर्म नहीं हुई तो दूध पीने में कौनसी शर्म लग रही है!" इस पर शिशु तुरन्त माँ का स्तन पीने लगा। शिशु की माँ से लल्ला ने उसका नाम पूछा। उत्तर मिला "सोदर"। यह सुन लल्ला ने कहा, "सोद्रिछि मोक्तय नेरान!" अर्थात्—"समुद्र से तो मोती ही निकलते हैं।" कश्मीरी में 'सोदर' शब्द का अर्थ होता है समुद्र।

नुन्द ऋषि बड़ा हुआ तो वह, उसका शिष्य बाबा नसरुद्दीन और लल्लेश्वरी प्रायः मिला करते और आध्यात्मिक विषयों की चर्चा छिड़ जाती। इन गोष्ठियों में कभी-कभी विनोद और नोक-झोंक भी होती रहती। लल्ला प्रायः अपनी वाग्विदग्धता के कारण इस नोक-झोंक, आध्यात्मिक चर्चा

ग्रौर वाग्प्रतियोगिताओं में सबसे आगे रहती। ये चर्चायें प्राचीन फारसी में लिखी पुस्तकों 'ऋषिनामा' और 'नूरनामा' में संग्रहीत हैं।

एक बार ऐसे ही तीनों बैठे बातचीत कर रहे थे कि बाबा नसरुद्दीन ने कहा—

सिरियस ह्यू प्रकाश नो कुने
गंगि ह्यू नो तीरथ काँह
बा'यिस ह्यू नो बाँदव कुने
रनि ह्यू नो सोख काँह

अर्थात्—सूर्य की-सी रोशनी दूसरी नहीं है। गंगा के समान कोई तीर्थ नहीं। भाई के समान सगा कोई और नहीं और पत्नी-सा कोई सुख नहीं यह सुन शेख नूरुद्दीन ने कहा—

अछिन ह्यू नो प्रकाश कुने
कोठ्यन ह्यू नो तीरथ काँह
चँद्स ह्यू नो बाँदव कुने
ख्यनस ह्यू नो सोख काँह

अर्थात्—आंखों का-सा प्रकाश कहीं और नहीं। अपने ही घुटनों के समान कोई दूसरा तीर्थ नहीं। जेब-सा सगा कोई दूसरा नहीं और खाने-हँसने के सुख के समान कोई सुख नहीं।

और अन्त में लल्लेश्वरी बोली—

मयस ह्यू नो प्रकाश कुने
पयस ह्यू नो तीरथ काँह
दयस ह्यू नो बाँदव कुने
भयस ह्यू नो सोख काँह

अर्थात्—ईश्वर की प्रेम-मदिरा-सी ज्योति कोई दूसरी नहीं। ईश्वर की खोज के समान कोई तीर्थ नहीं। स्वयं

ईश्वर-सा कोई सगा नहीं और ईश्वर के भय-सा कोई सुख नहीं।

यों तो लल्ला के जीवन के विषय में जो कुछ भी ज्ञात हो सका है, वह उसकी चमत्कारिक लीला से भरा पड़ा है, किन्तु कई ऐसे चमत्कार उसके नाम से जुड़े हुए हैं जिनमें लोक-मानस का गहरा विश्वास है। उसके चमत्कारों की इन कथाओं से यह पता चलता है कि लोग उसे कितनी महान् अलौकिक विभूति समझते थे। टेम्पल का विचार है कि ये सब कथायें लोक-कथाओं का ही बिगड़ा हुआ रूप हैं जिसमें लल्ला का नाम आरोपित किया गया है। ग्रियर्सन इनमें से किसी एक को भी विश्वसनीय नहीं मानता; मगर किसी भी कश्मीरी पण्डित से पूछिए, उसे इन सब कथाओं में शतशः विश्वास है।

कहते हैं कि एक दिन लल्लेश्वरी के गुरु सिद्ध बोयू के मन में अपनी शिष्या का योगबल देखने की इच्छा हुई। इस आशय से वह उसके पास गया तो उसने अपनी शक्ति का कुछ प्रदर्शन करना स्वीकार किया। पूर्णिमा की रात को वह एक शुद्ध किये गये कमरे में घुसी और वहाँ स्थिर खड़ी रही। एक मिट्टी की थाली—जिसे कश्मीरी में 'टोक' कहते हैं—उसने अपने सिर ऊपर उल्टी रखी और एक पाँव के नीचे। ज्यों-ज्यों चाँद की कलायें घटती जाती थीं उसका शरीर भी लघु होता जाता था और अमावस को वे दोनों 'टोक' मिल गये—ऊपर वाले टोक ने निचले टोक को ठीक तरह से ढँक लिया। आश्चर्य-चकित सिद्ध प्रतिदिन यह सब कुछ देखा करता था। अमावस को उसने कमरे में प्रवेश किया तो उसे घोर विस्मय हुआ। ऊपर वाला 'टोक' उसने हटाया तो निचले 'टोक' में पारे की भाँति कोई वस्तु चमक रही थी और काँप-सी रही थी।

पुनः चाँद के बढ़ने के साथ-साथ योगिनी का शरीर भी आकार में बढ़ने लगा और पूर्णिमा को वह फिर अपने पूर्व रूप में दिखलाई दी। सिद्ध हैरान तो था ही—अपनी ही शिष्या से अपनी शंका का निवारण भी उसे कराना पड़ा। उसने लल्ला से थाली में चमक रही वस्तु के काँपने का रहस्य पूछा। तुलसी की-सी विनय दिखलाते हुए लल्ला ने कहा कि वह चमकती वस्तु लल्ला का ही लघु स्वरूप था और उसके काँपने का कारण था कि कहीं यह तपस्या भी ईश्वर को अस्वीकार न हो। उसकी कृपा के बिना तो मनुष्य के कृत्यों का कोई महत्त्व नहीं। शिष्या की यह महानता देखकर गुरु का माथा नत हो गया—

गव चाठा गोरस खसिथय
सुयवर दितम दीवा !

शिष्य गुरु से भी आगे निकल गया है; हे ईश्वर, वर दो कि मैं भी उसी के समान हो जाऊँ।

एक और कथा—पाम्पोर में नाट्य-प्रदर्शन हो रहा था। दर्शकों की भारी भीड़ एकत्रित हुई थी। अर्धनग्न अवस्था में लल्ला भी वहाँ जा पहुँची। भीड़ में उसका ससुर भी मौजूद था। उसने लल्ला को वस्त्र-विहीन देखा तो पास बुला कर इस अभद्रता के लिये डाँटा। लल्ला हँसी, बोली—यहां कोई आदमी है ही नहीं तो लज्जा-निवारण किस लिए ? ससुर ने समझा कि लल्लेश्वरी सचमुच पागल हो गई है। मगर लल्ला के कहने पर जब उसने स्वयं खिड़की से झाँका तो विचित्र दृश्य था। कहीं कोई आदमी न था; सारी जगह ढोरों, चूज़ों और अन्य पशुओं से भरी पड़ी थी। बेचारे के आश्चर्य का ठिकाना न रहा।

नुन्द ऋषि, लल्लेश्वरी और शाह हमदान मिलने पर प्रायः अपना-अपना कमाल दिखलाते थे। लल्ला दोनों को पछाड़ उनके गर्व को चूर कर देती थी। इस आशय की अनेक कहानियाँ प्रसिद्ध हैं।

एक कथा के अनुसार तीनों एक दिन लुकन-छिपाई का एक खेल खेल रहे थे। नूरुद्दीन और शाह हमदान छिपे तो लल्ला ने उन्हें झट ढूंढ निकाला। लल्ला की छिपने की बारी आई। उसने उनसे कहा कि यदि वे उसे ढूँढ न पायें तो तीन बार उसे उसका नाम ले पुकारें, वह प्रकट हो जायेगी। लल्ला छिपी तो लाख खोजने पर भी उन दोनों के हाथ न आई। हार कर दोनों ने उसे तीन बार नाम लेकर पुकारा, तब कहीं वह दिखाई दी। पूछने पर उसने बताया कि उसने अपने शरीर को पाँच तत्त्वों से मिला लिया था, अतः उसे इधर-उधर खोजना निरर्थक था।

तीनों के बारे में एक और कथा—तीनों बैठे थे; साथ में सिद्ध श्रीकंठ भी था। आध्यात्मिक विषय की चर्चा चल रही थी कि सहसा आकाश पर बादल का टुकड़ा फैलता हुआ दिखाई दिया, उसके साथ-साथ आँधी भी आई। यह देख शाह हमदान ने भविष्यवाणी की—"बारिश होगी।" "नहीं ओले पड़ेंगे"—शेख नूरुद्दीन ने उसे काटा। सिद्ध ने कहा—"वर्षा या ओले नहीं पड़ेंगे, हिमपात होगा"। उन्हें ऐसी भविष्य-वाणियाँ करते देख लल्ला ने तीनों को डाँट बताई—"फुकर अय त मकर क्या ?" अर्थात् 'फकीरी है तो मक्कारी क्यों ?'। किन्तु इस वाक्य का एक और अर्थ है—'मकर' कश्मीरी में पोस्ते के बीज के समान जमी हुई बर्फ को भी कहते हैं। लल्ला ने ये शब्द कहे नहीं थे कि सचमुच मकर पड़ने लगी।

एक कथा और—शाह हमदान ने चाहा कि लल्लेश्वरी को अपना रूहानी कमाल दिखाये। उसने एक पतीले में कुछ चावल डाले और पानी भी। वह पतीला उसने अपने सिर पर रखा। कुछ ही देर में पानी गर्म हो गया और चावल उबलने लगे। यह अभिमान-प्रदर्शन लल्लेश्वरी को अच्छा न लगा। गर्वीले सूफी का गर्व दूर करने के हेतु वह उसे नदी के किनारे ले गई। वहाँ पहुँच लल्ला ने नदी के पानी में अपना हाथ डाला। उसने हाथ डाला ही था कि नदी का सारा पानी गर्म होकर उबलने लगा। हमदानी लज्जित हो गया।

ऐसी ही अनेक कथायें लल्लेश्वरी के चमत्कारों के विषयों में प्रसिद्ध हैं। इन कथाओं से लोगों की उस योगिनी के प्रति अपार श्रद्धा झलकती है। मगर स्वयं लल्ला ने चमत्कारों को कोई महत्त्व नहीं दिया, उसकी दृष्टि में यह सब तमाशा है, विनोद है, हेय है—

भड़की हुई आग को पल में शान्त कर देना,
या आकाश में दो पाँवों पर चलना
या लकड़ी की गाय को दोह कर दूध निकालना
यह सब कितना ही अद्भुत क्यों न लगे, यह तो मदारी का खेल ही है!

लल्ला की मृत्यु काफी वृद्धावस्था में बिजनिहारा को जामा मस्जिद के दक्षिण पूर्व भाग में हुई। बिजनिहारा श्रीनगर से २८ मील दक्षिण पूर्व में स्थित है। कहते हैं कि मृत्यु के समय उसने स्वयं अपनी देह का परित्याग किया और उसकी आत्मा एक दिव्य-ज्योति का रूप धारण कर ऊपर को उठी और आकाश में अन्तर्धान हो गई।

विचार

लल्लेश्वरी की दार्शनिक मान्यतायें उस दर्शन पर आधारित थीं जो कि जीवन और संसार को असत्य न मान कर उनमें आस्था रखना सिखलाता है; जिसके अनुसार यह विश्व शिव का आत्म-प्रकाशन है, उसका काव्य है। जैसे काव्य कवि की कल्पना में अन्तर्हित रहता है वैसे ही संसार भी पहले शिव में अन्तर्हित था और प्रलय के समय पुनः अन्तर्हित हो जाता है। शिव, भक्ति और आत्मा की चर्चा करने वाला यह कश्मीर शैव-दर्शन त्रिक दर्शन कहलाता है और इसे आस्तिक दर्शनों में सब से अधिक युक्त और तर्क-संगत कहा जा सकता है। वास्तव में यह दर्शन किसी संकीर्ण मतवाद का प्रचार नहीं करता—यह तो एक सार्वदेशिक दर्शन है। इस दर्शन का प्रादुर्भाव कश्मीर में नौवीं शताब्दि में हुआ। श्रीकंठ के रूप में स्वयं शिव ने इसका प्रतिपादन किया। अतः यह अपने मूल रूप में अपौरुषेय है। त्रिक दर्शन ग्रन्थों के तीन मुख्य भाग किये जा सकते हैं—शिवसूत्र, स्पन्दशास्त्र और प्रत्यभिज्ञा दर्शन। इनमें से प्रथम शिव-सूत्र तो स्वयं शिव द्वारा कहे गये हैं; टिप्पणियों और व्याख्या-सहित स्पंदशास्त्र की वसुगुप्त (८५० ई०) ने रचना की; प्रत्यभिज्ञा दर्शन के प्रतिपादक रहे हैं वसुगुप्त के समसामयिक दार्शनिक सोमानन्द। ग्यारहवीं शताब्दी में अभिनवगुप्त ने इन दार्शनिक सूत्रों को संगठित करके एक रूप दिया और अनेक ग्रन्थों की रचना करके इसकी व्याख्या की। वास्तव में कश्मीर शैवधर्म का वर्तमान स्वरूप उसे अभिनवगुप्त द्वारा ही दिया गया है। लल्लेश्वरी के समय में इन

महान दार्शनिकों द्वारा प्रतिपादित यह धर्म कश्मीर में अपना महत्त्वपूर्ण स्थान बना चुका था। लल्ला ने इन दार्शनिक सत्यों को अपने छन्दों द्वारा लोक-मानस में स्थापित किया ताकि सभी सत्य का साक्षात्कार करें। सत्य से—विराट से, शिव से साक्षात्कार ही उसकी दृष्टि में जीवन का चरम लक्ष्य है। इसी से मुक्ति की प्राप्ति होती है। वास्तव में आत्मा में और शिव में कोई भी अन्तर नहीं—इस समय के उदय होते ही व्यक्ति परम-शिव से एकाकार हो जाता है। जो इस बात में विश्वास नहीं रखते वे अज्ञानी हैं, मूर्ख हैं! लल्लेश्वरी का विश्वास था कि बिना शिव को समर्पित किये मानव द्वारा कृत कर्मों का कोई महत्त्व नहीं। वास्तव में उसकी शिव की कल्पना बहुत ही उदात्त है। इस शिव से मिलन ही तो मुक्ति है। और मुक्तिकामी व्यक्ति को अन्य सभी सांसारिक इच्छायें त्याग देनी चाहिएँ। अपने इन विश्वासों, विचारों को लल्ला ने सुन्दर काव्य भाषा में व्यक्त किया।

लल्लेश्वरी की शैवधर्म में आस्था थी परन्तु उसने संकीर्ण मतवादों के घेरों को कभी स्वीकार नहीं किया। उसने जो कुछ कहा वह तो सार्वभौम अपील रखता है। किसी धर्म या सम्प्रदाय विशेष को अन्य धर्मों या सम्प्रदायों से श्रेष्ठ मानने की भावना का उसने खुल कर विरोध किया। उसके विचार उदार थे, उदात्त थे। ब्रह्म को चाहे जिस नाम से पुकारो वह ब्रह्म ही रहता है; सच्चा सन्त वही है जो प्रेम और सेवाभाव से सारी मानव जाति के कष्टों को दूर करे; व्यक्ति जो कुछ भी करे वह हिन्दू हो या मुसलमान—चाहे जिन साधनों द्वारा जीविका का उपार्जन करे—इस सबका कोई महत्त्व

नहीं यदि वह उचित उपायों द्वारा शिव की खोज में रत रहे।

शिव वा केशव वा जिन वा
कमलज़नाथ वा नावधरे
म्य अबलि का'स्यत्यन भवरुज़
सुहवा सुहवा सुहवा सुह !

अर्थात्—वह शिव हो या केशव हो या जिनदेव हो; उसे कमलजनाथ कह कर ही कोई क्यों न पुकारे—इससे क्या होता हैं। मैं अबला भवरोग से रुग्णा हूँ—मेरे रोग को वह दूर करे, चाहे वह, वह हो, या वह, या वह !

लल्ला कबीर की भाँति क्रान्तिकारी व्यक्तित्व रखती थी। जहाँ उसमें विभिन्न धर्मों के विचारों को समन्वित करने की अद्भुत शक्ति थी वहाँ वह धार्मिक रूढ़ियों, अन्धविश्वासों, अस्तस्थ मान्यताओं और रीतियों पर कड़े प्रहार किया करती थी। इसकी चोट बड़ी घातक थी—कठमुल्ला और धर्म के नाम पर लोगों को ठगने वाले उससे तिलमिला उठते थे। वह लोगों को यह समझाती फिरती थी कि धार्मिक बाह्याडम्बरों का वास्तव धर्म से, ईश्वर से कोई सम्बन्ध नहीं। तीर्थयात्राओं और शरीर को कष्ट देकर की जाने वाली तपस्याओं से ईश्वर की प्राप्ति नहीं होती—नहीं ही होती। बाहरी पूजा एक ढकोसला मात्र है—

गगन चय भूतल चय
चय द्यन पवन त राथ
अर्धचंदुन पोष-पोज़ चय
चय अय सकल त ल'गज़ि क्याह !

अर्थात्—देव, फिर पूजा कैसी आज

तू ही पवन, गगन, भूतल तू, तू ही दिन तू रात
तू ही अर्घ्य-पुष्प-जल-चन्दन, सब कुछ तू ही तात
व्यर्थ आरती, व्यर्थ अर्चना की वह भ्रममय बात
व्यर्थ ये पूजा के सब साज !

देवी-देवताओं को पशु-बलि देना कश्मीर में एक बहुप्रचलित धार्मिक प्रथा रही है, और आज भी है। "अचेतन पत्थर को चेतन बकरे" की यह बलि लल्लेश्वरी को सह्य नहीं थी। उसने स्पष्ट शब्दों में धर्म के पोंगा-पंथियों को ऐसे सब कृत्यों को बन्द कर देने को कहा जिनसे मानव अपनी मानवता खो बैठता है। अपने उग्र विचारों के कारण उसे संकीर्ण मतवादियों का कड़ा विरोध सहना पड़ा। नग्नावस्था में घूमने की उसकी आदत को लेकर उसके विरुद्ध घृणित प्रचार किया गया। परन्तु लल्ला ने तर्क से उनके मुँह बन्द कर दिये—यह बाह्य संसार तो वास्तविक नहीं, व्यक्तिमात्र शरीर तो नहीं, वास्तविक है यह परमशिव और उससे मिलने के लिए बहिर्मुखी नहीं, अन्तर्मुखी होने की आवश्यकता। कभी-कभी पण्डितों की मूढ़ता से वह बहुत खीझ उठती थीं—

पोथी पर पोथी ये रटते रहते फिर भी कोरे—
ये पण्डित, ये अविचारी कुछ ज्ञान न इनमें गड़ता
राम नाम का पाठ कि ज्यों पिंजड़े का तोता पढ़ता
गीता पढ़ना एक दिखावा—धिक् रे इनकी जड़ता
सुनी-गुनी गीता मैंने भी, लेकिन ये मति भोरे—
पोथी पर पोथी रटते रहते कोरे के कोरे !

शास्त्रों की तोता-रटन्त को नहीं व्यक्ति की निजी आध्यात्मिक उपलब्धियों को उसने महत्त्व दिया। आध्यात्मिक

उपलब्धि पूजा के बाह्य विधानों या पत्थर की मूर्तियों को नमन करने से नहीं होती, यह उसका स्पष्ट विश्वास था। मूर्ति-पूजा का विरोध जिस तीव्रता से और जिन शब्दों में लल्लेश्वरी ने किया उससे सहसा कबीर की याद आ जाती है—वही निर्भयता, वही खुली चुनौती, वही स्पष्टवादिता ! इसी बात को लेकर अपने गुरु तक से उसकी झड़प हुई। गुरु सिद्ध श्रीकंठ मन्दिर में बैठे उपासना कर रहे थे कि लल्लेश्वरी वहाँ आ पहुँची और कहा कि वह शौच-निवृत्ति के लिए आई है। गुरु अत्यन्त क्रुद्ध हुए और अपनी शिष्या को बुरी तरह से फटकारा। शिष्या हँसी, बोली—जिन पत्थरों की तुम उपासना करते हो वे तो सभी जगह पड़े हैं, फिर मन्दिर में पड़े पत्थरों को ही परमात्मा क्यों मान लिया जाये। "अकय शिल छ्य पटस त पीठस"—चक्की का बाट और मन्दिर की मूर्ति तो एक ही शिला की बनी है ! फिर क्यों न चक्की के बाट की ही पूजा की जाये ! अरे पण्डित योगाभ्यास द्वारा आत्मा और शिव को एक करो—यही सच्ची साधना है—

पूजता किसे अरे नादान ?
पाहन है यह देव और देवालय भी पाषाण
पर दोनों वाहन हैं पण्डित, तू धरता किसका ध्यान ?
मन औ' पवन मिला ले—पूजा का यह सही विधान
मूढ रे ! बाकी सब अज्ञान !

यों मध्य युग के अन्य सन्त कवियों की भाँति लल्लेश्वरी को उलट-बाँसियों और कूट पदों का शौक था; मगर उसने अधिकतर जन-भाषा में ही जन को ईश्वरत्व से परिचित कराया। उसे अपने में पूरा विश्वास था। उसे विश्वास था कि उसने शिव की प्राप्ति कर ली है और अब वह अपने 'वचनों

की सुधा' द्वारा औरों का प्यास मिटा रही है। परन्तु लल्ला के वचनों का प्रमुख स्वर रहा है उसका उदात्त और उग्र मानवतावाद शिव और जीवात्मा को एक समझने वाली साधिका मानव को हेय कैसे और क्यों कर माने। इसीलिए मानवों पर जहाँ भी, जैसा भी अन्याय होता, लल्ला के मन में उसके विरुद्ध तीव्र प्रतिक्रिया होती। और अपनी इस प्रतिक्रिया को वह स्वयं ईश्वर के, साहब के, शिव के सम्मुख स्पष्ट शब्द में व्यक्त करती थी। उसे दुख होता था यह देखकर कि, "कुछ लोग हैं जो शिशिर की आँधी में काँप रहे सूखे पत्ते के समान दीन हैं और कुछ ऐसे भी हैं जो मूर्ख होते हुए भी रसोइये को अस्वादिष्ट भोजन बनाने के लिए डाँटते हैं।" फिर भी उसे विश्वास है कि आखिर ईश्वर इन दुःखों को दूर करेगा ही। यही विश्वास दुःखी मानव जाति में उसने गा गाकर जगाया।



वि. वैदिक शोध संस्थान सिद्ध लेखकों द्वारा विविध सांस्कृतिक विषयों पर विशेष रूप से पुस्तकें लिखवा कर प्रकाशित करता है। ये पुस्तकें विविध आयु के व्यक्तियों को दृष्टि में रख कर तैयार करायी जाती हैं। एक कार्ड डाल कर आप उनका विस्तृत सूची-पत्र मंगा सकते हैं।

इस शृङ्खला की अन्य पुस्तकें :

महात्मा बसवेश्वर (कर्नाटक)	श्री पी. एन. भट्टतिरि	मू० ५० न. पै.
सन्त ज्ञानेश्वर (महाराष्ट्र)	,, रामशिरके	,,
चैतन्य महाप्रभु (बंगाल)	,, सुदर्शनसिंह चक्र	,,
महात्मा कबीर (उत्तर प्रदेश)	,, रत्नचन्द्र	,,
भक्त नरसी महेता (गुजरात)	,, श्रीपाद जोशी	,,
गुरु नानकदेव (पंजाब)	,, संतोष कुमार	,,
कवि शंकरदेव (आसाम)	,, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	,,

भारतीय नवोदय के अग्रदूत :

राजा राममोहन राय	श्री अखिल विनय	मू० ७५ न. पै.
स्वामी दयानन्द	,, सुदर्शनसिंह चक्र	,,
स्वामी विवेकानन्द	,, महीपसिंह	,,
स्वामी रामतीर्थ	,, रामकृष्ण	,,
श्री अरविन्द	,, महेन्द्र कुलश्रेष्ठ	,,